अध्याय - 2

हिंदी कविता में स्त्री : विभिन्न चरण

अध्याय–दो

2.0. हिंदी कविता में स्त्री : विभिन्न चरण

2.1. भारतीय आधुनिकता या नवजागरण

कविता को स्त्री मानी जाती है। कविता की कोमल भावना, रसमयता और प्रवाहमयता को दृष्टि में रखकर इस तरह का रूपक गढ़ा गया है कि वह स्त्री प्रकृति है। आधुनिक ज़माने तक आती–आती कविता वैचारिक बातों की वाहिका होती गई, बड़े–बड़े आंदोलनों तक में अपनी भूमिका निभाने लगी। इस दौर तक पहूँचते ही उसकी विधात्मक प्रतियोगिता गद्य की विविध विधाओं को बरकरार रखती हुई इंसानी जीवन की संवेदनाओं का माध्यम बनी। यहाँ पर आकर वह वैचारिकता को भी समाज रूप से संभालती नज़र आती है।

मध्यकालीन देशी भाषा में प्रचलित काव्य परंपरा की कडी के रूप में ही आधुनिक हिंदी कविता का रूप मिलता है। उसका यह स्वाभाविक विकास था। आधुनिकता के व्यापन, जागरण के विविध रंगी विकास आदि ने उसकी रूप शैली को नवता प्रदान की तो वह आधुनिक कविता बन गई।

भारत में आधुनिकता की शुरुआत नवोत्थान या नवजागरण काल से माना जा सकता है। इसके सामाजिक परिवर्तन साहित्य या सांस्कृतिक प्रभाव भारतेंदु युगीन साहित्य में मिलने लगता है। इस संबंध में शोध कार्य प्रस्तुत करनेवाली गायत्री महेश्वरी का मानना है कि, ''भारत में स्त्री आंदोलन की असली शुरुआत 19वीं सदी के आखिरी दशकों में हुई जब पंडिता रमाबाई, रमाबाई रानडे, आनन्दीबाई जोशी, फ्रानना सरोबजो, एनी जगन्नाथन और

रुक्माबाई जैसी औरतें अपने घरों में पुरुषप्रधान समाज द्वारा थोपे बन्धनों को तोडकर ऊँची शिक्षा के लिए विदेश गई और लौटकर उन्होंने भारत के स्त्रियों के आंदोलन को आगे बढ़ाया।''[1]

2.2. भारतेंदुयुगीन कविता और स्त्री

भारत में आधुनिकता को नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में आंका जाता है। कई लोग आधुनिक शब्द से कतराते भी हैं। पर धीरे–धीरे यह शंका निराधार होती गई कि आधुनिकता सिर्फ पाश्चात्य अवधारणा है। हर प्रदेश में इसने प्रभाव डाला है, जो दूसरे भिन्न परिसरों का सृजन किया है। अजय तिवारी के अनुसार, ''आधुनिकता समस्याग्रस्त ही नहीं, दुविधाग्रस्त भी है। उसकी दो परंपराएँ हैं। साम्राज्यवादी आधुनिकता और प्रतिरोधी आधुनिकता। जिस सीमा तक उनकी अर्न्तवस्तु वर्चस्व और प्रतिरोध की परस्पर विरोधी शक्तियों से बनी है, उस हद तक उनमें भिन्नता है। जिस हद तक वे आधुनिक परिवेश और विश्वबोध से निर्मित हुई है, उस हद तक उनमें समानता है।''[2]

मतलब साफ है कि आधुनिकता की अंतर्वस्तु और प्रतिरोध दोनों पक्षों पर अध्ययन कर्ताओं को ध्यान देना पड़ता है। उसके बाहरी व भीतरी स्तरों पर अवलोकन करने से ही प्रदेशी मनोभूमि पर इसके प्रभावों का विवेचन किया जा सकता है। यहाँ पर भारतीय आधुनिकता को नवजागरण के परवर्ती सांस्कृतिक विकास के प्रभावों के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास है।

---

1. गायत्री महेश्वरी, समकालीन कविता में स्त्री, पृ. 8
2. अजय तिवारी, आधुनिकता पर पुनर्विचार, पृ. 52

भारतेंदु युगीन कविता में स्त्री जागरणात्मक स्वरों की पृष्ठभूमि तैयार करने के तत्व विद्यमान थे। इस युग के साहित्यिक कार्य मुख्यतः पुरुष करते थे। साहित्यकार और संपादक मुख्यतः पुरुष थे। पर समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर वे स्त्री जागरण के विषय पर साहित्यिक रचनाओं का सृजन करते थे।

भारतेंदु युगीन साहित्य में विशेषकर कविता में भी इतिवृत्तात्मकता एवं परंपरागत धारणाओं व विश्वासों की झाँकियाँ मिलती हैं। तब भी स्त्री को स्वतंत्र रूप में देखना न साहित्यकार के लिए संभव था, न समाज सुधारकों के लिए। पर एक बात में ये सब समान रूप से सहमत रहते थे कि स्त्री की दलितावस्था एवं गुलामी सामाजिक संरचना के विकास में बाधक रहती हैं।

स्वतंत्रता संग्राम में सबको शामिल करने हेतु स्त्रियों से सार्वजनिक संग्राम में साथ लेने का आह्वान तत्कालीन सभी पत्रिकाओं के आलेखों व रचनाओं में छाप मिलता है। स्त्री शिक्षा, दहेज प्रथा का विरोध आदि पर उपदेशात्मक कहानियाँ इस समय की देन हैं। पर यह काफी नहीं था। स्त्री के पक्ष में जागरण और विकास अनिवार्य था। पत्र–पत्रिकाओं में गद्य के माध्यम से प्रगतिमूलक तत्वों का समावेश करके रचनाएँ प्रकाशित की जाती थीं, तब कविता पुरानी शैली में ही नव विषयों व संकल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए छटपटा रही थी।

भारतेंदु युगीन चर्चा में स्त्री संबंधी जो विषय शामिल हैं, उनमें से बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि उद्धृत कर सकते हैं। प्रमुख कवियों ने अपनी रचनाओं

के माध्यम से इन अनाचारों के प्रति असहमति व्यक्त की है। उदाहरण के लिए डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने बाल विवाह पर आक्रोश किया है और इसे समाज से मिटाने का आग्रह प्रस्तुत किया है।

''झूठी यह गुलाली की लाली धोबत ही मिटिजाय
बाल ब्याह की रीति मिटाओ, रहे लाली मुँह छाया।'' [1]

बद्री नारायण चौधरी प्रेमघन अपनी कविता में एक युवती की अस्वस्थ मानसिकता व्यक्त करते है, जो अपनी इच्छा के विरुद्ध दबाव में आकर बालक से शादी करने के लिए मजबूर होती है। इस विवाह को कवि गाय को बेचने जैसा निष्ठुर कार्य बताता है। पारिवारिक मर्यादा या पुरुष की इच्छापूर्ति के नाम पर स्त्रियों की उपेक्षा उस समय में आम बात थी, समाज और व्यवस्था की रीतियाँ इस युग की कविताएँ सूचित करती हैं।

''बेचते गाय कसाई के घर।
कोऊँ हरकत नहीं रामा।
हरि हरि जुरे नार और भाई
सबै सयनवा रे हरी।'' [2]

प्रताप नारायण मिश्र भी बाल विवाह से छुटकारा पाने का आग्रह कविता में प्रस्तुत करते हुए नज़र आते हैं। उदासीनता और ऊपर व्यक्त होनेवाली अन्यायों पर कवि चिंतित प्रतीत होता है।

---

1. डॉ. केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा, पृ. 48
2. प्रेमधन–सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ. 535

प्रताप नारायण मिश्र की एक कविता 'विधवा' में वे अपनी सहूलियत व्यक्त करते हैं। बाल विधवा पर समाज हीन नज़रिए से देखता है। स्वजन भी वैर भरी दृष्टि से व्यवहार करते हैं और उसकी उपेक्षा करते हैं। कोई उसकी सहायता या उसे आश्रय देने की बात नहीं सोचता है।

''कौन करे जो नहीं कसकत सुनि,
विपल बाल विधवन की है।
ताते बढिकै क्रेदना काव्यकुंज कनच की रै।
बैर परे पितू मातु ब नाई युवती बाल
वृद्दन की है।
पशु सम समझी जाती नहीं बनिता
रिषि पंशन की है।
कोह न कलवै जियत खसम पर हो
जो हि भसम रमाई है।
दीन बंधू बिन दीन को दीसत कोऊ
न सहाई है।''[1]

''बाल ब्याह जब कियो तज्यो सत्काम सकल
जार पंथ चित, दियो तिया शुचि लाग लेनबुधि
भए समुरख सकल विधि तियमय लागे जग लडन;
सब मर्यादा धर्म तीज लगे मातू पितू से लइन।
याते करिए विचार बाल–ब्याह नहिं कीजिये;
वच विद्या अनुहरि पूर्ण अवस्था व्यहियो।''[2]

---

1. प्रताप नारायण मिश्र, प्रताप लहरी, पृ. 99
2. प्रताप नारायण मिश्र, ब्राह्मण, पृ. 616

बाल विवाह और विधवा समस्या, नाबालिक विधवाओं की विषमताएँ आदि पर भी कविताएँ बोलती हैं। नाथूराम शंकर शर्मा की कविता 'गर्भरंडा रहस्य' में यही बात स्पष्ट होती है।

''सारी सहें शोक संताप व्याकुल विधवा करे विलाप
जरे सुहाग पिया के संग तरसत रहे अछूते अंग
तब हितें अबलौ बेचैन में दुख भोगता हूँ दिन रैन
इन अन्यायिन को अन्याय अब तो सह्यो न देखो जय
भयो कठोर और करतार हमको
मार कि संकट हार।''[1]

बाल विवाह के समान ही अनमेल विवाह की समस्या भी उस समय के स्त्री जीवन को मुश्किल बना रही थी। उसूलों और विश्वासों के नाम पर इस कुप्रथा का फैलना स्त्रियों के लिए दासतापूर्ण अनुभव दे रहा था। पितृसत्तात्मकता को बनाए रखने के लिए भी अनमेल विवाह स्वीकार किया जाता था।

''अस्सी वारिस के भयः बूढ तू, जेस
हमार परपाजा राजा।
हरि हरि हम बारह बारिस के अब ही
बालत वरे हरी
जब लग चढे जवानी हम पर तब
तकतू मरजिय रामा।
हरि हरि लाजधरम सब धोय
पी डाल रे हरि दे।''[2]

---

1. नाथूराम शंकर शर्मा, शंकर सर्वस्व, पृ. 268
2. प्रेमधन, सर्वस्व (प्रथम भाग), पृ. 563

दहेज प्रथा पर भारतेंदु युग से ही कवियों ने लिखा है। भारतीय समाज में दहेज प्रथा सदियों से चली आ रही है। इसके मूल में सामाजिक एवं धार्मिक रीतियों के साथ मनुष्य की पाशविक मनोवृत्तियाँ प्रवर्तित हैं। दहेज के कारण परिवार में लडकी को जन्म से लेकर बोझ मानने की रीति है। दहेज स्त्री को वस्तु बनाने का उपकरण भी है। इस प्रथा की विभीषिका पर स्नेही जी की कविता बोल उठती है :–

"यह दहेज की आग सवंशों को दहकाई
प्रलय वहिनी–सी वह आज चारों दिसी छाई।
घर उजाड बन बना रही कर रही सफाई।
तपे रहे हम मुद्रित समझते होली आई।"[1]

2.3. द्विवेदी युगीन कविता और स्त्री

द्विवेदीयुगीन काव्य से लेकर तीन चार दशकों तक जारी रही द्विवेदी युगीन तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के कवि उपर्युक्त बात की पुष्टि करते हैं। हरिऔध जी की राधा से ही स्त्री के इंसानी स्वरूप की छवि धीरे–धीरे ही सही, सामने आ रही थी।

मैथिलीशरण गुप्त एवं दिनकर के पास पहुँचते–पहुँचते यह छवि और प्रखर होती है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने उपेक्षित स्त्री व्यक्तित्वों को आवाज़ देते हुए उन्हें नयी भूमि पर खड़ा कर दिया तो दिनकर ने उर्वशी जैसी रचनाओं के माध्यम से अप्सराओं व परियों संबंधी मिथकों की पुर्नरचना की। काव्य सौन्दर्य और काव्य प्रथा दोनों में ये कवि अनुपम निकले थे।

---

1. गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, हिंदी कविता में युगांतर, पृ. 150

सुभद्राकुमारी चौहान ने तब तक काव्य में व्याप्त स्त्री छवियों को पीछे छोडनेवाली झाँसी की राणी की रचना की। इसमें राणी लक्ष्मीबाई की वीरता, दुर्गा के रूप में संहार आदि को संग्रामी स्वर में व्यक्त किया गया। स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में स्त्री की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाने के लिए यह कविता प्रेरणादायक रही है। कोमलता से युक्त स्त्री का चित्रण यहाँ से लेकर साहित्य से दूर हुआ।

''लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों की वार,
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार।''[1]

यह कहना उचित नहीं है कि भारतेंदु युगीन स्त्रियाँ जागृत हैं। यह भी स्वीकार करना है कि वहाँ से स्त्री की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भागीदारी पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिए जाने का ऐतिहासिक अवसर हासिल हुआ है। परवर्ती समय में विकसित स्त्री जागरण के समय में भारतेंदु, द्विवेदी छायावाद या परवर्ती साहित्यिक समय में प्रतिपादित स्त्री विषयों पर प्रश्चनिह्न लगाए गए। मगर समय–काल परिवर्तन की पृष्ठभूमि में सुभद्राकुमारी चौहान के साथ कवियों के योगदानों को नकारा नहीं जा सकता है। मण्डलियों व साहित्यिक सभाओं में स्त्री समस्याओं को विषय बनाने का प्रयास हुआ था, हालाँकि उस समय में भी स्त्रियों को सार्वजनिक जगहों पर जीवित स्वतंत्र प्राणी होने का अवसर प्राप्त नहीं था।

---

1. सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधासिंह, स्त्री काव्यधारा, झाँसी की रानी, पृ. 289

देखा जाता है कि भारतेंदु या द्विवेदीयुगीन स्त्रियाँ कभी अलग व स्वतंत्र व्यक्ति भी नहीं हो पाती थीं और उन पर चर्चा सिर्फ परंपरापोषक विषयों के साथ मिलाकर ही हुआ करती थी। पूरे समाज को जागरणात्मक स्वभाव या विकास के पडावों की दृष्टि से ही स्त्री जागरण को भी मिला देने का प्रयास होता था। देसी रूढ़ियों तथा साहित्यिक पूर्वधारणाओं से तब भी भारतीय स्त्री मुक्त नहीं थी।

मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत के माध्यम से साहित्य से परे होकर स्त्रीत्व की विषमता को समाज के सामने रखने की भरपूर कोशिश ऊर्मिला के द्वारा की। इस धारणा से मात्र पतिव्रता सीता से परिचित सामान्य जनमानस में ऊर्मिला के विरहिणी रूप को भी स्थान मिला। शंका नहीं कि गौण पात्रों को स्वीकारने और उनपर काव्य गठने का यह नया पड़ाव था। जिसमें उपेक्षित नारी पात्र की आवाज़ बाहर आई। भले ही इसे स्त्री जागरण बताना कठिन है, मगर यह उपेक्षित स्त्री की कर्तृत्व स्थापना का आरंभिक प्रयास था।

''स्वामि–सहित सीता ने नन्दन माना
सघन–गहन कानन भी,
वन ऊर्मिला वधू ने किया उन्हीं के हितार्थ
निज उपवन भी,
अपने अतुलित कुल में प्रकट हुआ था
कलंक जो काला,
वह उस कल बाग ने अश्रु सलिल से
समरत धो डाला।

भूल अवधि–सुध–प्रिय से कहती
जागती हुई कभी–'आओ'!
किंतु कभी सोती तो उठती वह
चौक, बोलकर 'जाओ'!
मानस मन्दिर में सती, पति की
प्रतिमा थाप,
जलती सी उस विरह में
बनी आरती आप'!''[1]

2.4. राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा और स्त्री

1961 में प्रकाशित दिनकर का काव्य नाटक 'उर्वशी' में भी स्त्री की अलग छवी प्रस्तुत होती है।

''मैं अदेह कल्पना, मुझे तुम देह मान बैठे हो;
मैं अदृश्य, तुम दृश्य देखकर मुझ को समझ रहे हो
सागर की आत्मजा, मानसिक तनया नारायण की।
कब था ऐसा समय कि जब मेरा अस्तित्व नहीं था?
कब आयेगा वह भविष्य जिस दिन मैं नहीं रहूँगी?
कौन त्रिया, मैं नहीं राजती हूँ जिसके यौवन में?
कौन लोक, कौंधती बहीं मेरी दृदिनी जहाँ पर?
कौन मेघ, जिसको न सेज मैं अपनी बना चुकी हूँ?
कहूँ कौन–सी बात और रहने दूँ कथा कहाँ की?

---

1. मैथिलीशरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त साहित्य, साकेत (नवम सर्ग), पृ. 11–12

मेरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्राण–कथा है
उसी भाँति निस्सीम, असीमित जैसे स्वयं प्रकृति है।''[1]

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के अंतर्गत भी स्त्री की समस्याओं को लिखने और प्रतिरोधी आवाज़ उठाने की कोशिश बरकरार थी। द्विवेदी युग में सभी कवियों का रचनाकर्म तीव्रगति से हो रहा था। कविता के क्षेत्र में भी विषय की विविधता और सामाजिकता को लेकर काफी रचनाएँ हुई थीं। जिनमें कुछ प्रमुख नाम हैं, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर, रामनरेश त्रिपाठी, गोपाल शरण सिंह, रामचरित उपाध्याय आदि।

मैथिलीशरण गुप्त ने जहाँ 'साकेत' में ऊर्मिला की प्रतिष्ठा की उसी प्रकार समाज से नगण्य माननेवाली वेश्याओं की वेदना पर भी गंभीरता से अपना वक्तव्य दिया है। भूखे बच्चों के पेट भरने के लिए अपना तन बेचती हुई स्त्री की विवशता मात्र उस स्त्री की नहीं, बल्कि हमारे समाज के सांस्कृतिक नाश का भी दस्तावेज है। सदियों से चली आ रही दुर्दशा ने देवदासी नामक वेश्या का रूप स्थापित किया है। स्त्री को मात्र शरीर समझनेवाली पुरुष मानसिकता ही इससे फायदा उठाता है।

''दीन कुल बालायें असहाय,
पाप कहिये या इसको पुण्य,
बेच जाती है तनू–तारुण्य।

---

1. रामधारीसिंह दिनकर, उर्वशी, पृ. 73

भार कर दे न कहीं–कीट भ्रंग

सास आ रही आस के अंग

साथ दो बच्चे नंगा–धडंगा।''[1]

वेश्याओं के पास जाकर काम पूर्ति करनेवाले पुरुषों से कवि का कहना है कभी तो इस स्त्री को, उसकी अवस्था को समझने की कोशिश करे। उनका गाना उनके जीवन की रोदन है उसे समझने का प्रयास करे :–

''रखती यही गुण वे कि गंदे गीतगान जानती

कुल, शील, लज्जा उस समय कुछ नहीं वे मानती,

हँसते हुए हम अहो, वे गीत सुनते सब कहीं,

रोदन करो है भाइयों, यह बात हँसने की नहीं।''[2]

भारतेंदु युगीन समान बाल विधवा समस्या पर इस युग की कविताओं में भी प्रतिपादन है। द्विवेदी और श्रीधर पाठक ने इस विषय पर अपना दुःख व्यक्त करते हुए कविताएँ रची थीं। इस स्थिति में बच्चियों पर क्या बीतती है, उस के लिए कौन ज़िम्मेदार है, जैसे प्रश्न उन्होंने उठाए हैं।

''दुखी बाल विधवाओं की जो है गलती,

कौन सके बतल किसकी इतनी मती,

जिन्हें जगत की सब बातों से आन है,

दुख सुख जीना मरना एक समान है।

जिनको जीते जी दी गई है तिलांजली,

उसकी कुछ हो दशा किसी को क्या पडी।''[3]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त, विश्व वेदना, पृ. 25
2. मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, पृ. 25
3. उद्धृत : श्रीधर पाठक, मनोविनोद, पृ. 76

''उच्छिष्ट रुक्षा अरु नीरस अन्न खैहौं,
चण्डालिनीव मुख बाहर मूँदि जौहों।
गलि प्रदान निश्विवासर नित्य पै हों
का हन्त! दुखमय जीवन यौं बितै हों।''[1]

रश्मिरथी में दिनकर जी ने स्त्री की 'पतिता' अवस्था पर स्पष्टीकरण कुंती के द्वारा कर्ण से व्यक्त किया है। यह कथन सामाजिक रवैये की सदियों से चली आ रही उत्पीडन का खुला चित्र है।

''बेटा, धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी,
है बहुत कठिन बेद करना समाज के मुख को,
सिर उठा, न पा सकती पतिता निज सुख को।''[2]

इसी कविता में कवि अवैध माता होने का दुःख भी कुंती द्वारा व्यक्त करता है और सामाजिक भय से कैसे उसे अपना बच्चा छोडना पडता है, इस पर बोलता हैः–

''पर मैं कुमारिका थी जब तू आया था,
अनमोल लाल मैं ने असहाय पाया था।
अतएव हाय अपने दूध–मूहे तनये से,
भागना पड़ा मुझ को समाज के भय से।''[3]

आनंद लेने के बाद नर्तकियों को समाज या सामाजिक जीवन से निष्कासित करने की रीति उस समाज में प्रचलित थी। उन्हें मात्र मनोरंजन की वस्तु मानते

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाल विधवा विलाप, द्विवेदी काव्यमाला, पृ. 113–114
2. रामधारीसिंह दिनकर, रश्मिरथी, पृ. 29
3. वही, पृ. 49

थे। स्त्री शरीर को प्रदर्शन की वस्तु बनाना गलत था, पर जहाँ जहाँ उसका मनोरंजन होता था, वहाँ वहाँ पुंस समाज उसका पूरा फायदा उठाता था। दिनकर का कवि इसको शब्दबद्ध करता है –

''बरसते हैं, तुम्हारे अंग पर भी बाण आँखों के
असूया में बूढ़े, विद्वेष के तीखे जूहटवाले।
उन्हीं के सामने हो नाचती जिनकी निगाहों में
नहीं तुम और कुछ केवल सुयश की भिक्षुणी भर हो।''[1]

स्त्री की प्रधानता तथा स्वनिर्णय की दृष्टि से दिनकर की उर्वशी महत्वपूर्ण उदाहरण पेश करती है। मैथिलीशरण गुप्त की परंपरा में दिनकर ने विविध नारी पात्रों का चित्रण किया और उनकी उपेक्षिता–पतिता अवस्था पर सहानुभूति प्रकट की। पर 'उर्वशी' का पात्रचयन इस परंपरा के आगे नारी तथा चयन के अधिकार पर बल देनेवाला है। पूरा काव्य स्त्री चिंतन के लिए अनुपम उदाहरण है।

वेश्या या अप्सरा का जीवन, राजा की विलासिता आदि की धाारणाओं में उर्वशी नए चिंतन के लिए अवसर देती है।

''कुसुम और कामिनी, बहुत सुन्दर दोनों होते हैं,
पर तब भी नारियाँ श्रेष्ठ है कहीं कान्त कुसुमों से,
क्योंकि पुष्प हैं मूक और रूप सी बोल सकती है।
सुमन मूक सौन्दर्य और नारियाँ सवाक् सुमन रै।''[2]

---

1. रामधारीसिंह दिनकर, नीलकुसुम, नर्तकी, पृ. 31
2. रामधारीसिंह दिनकर, उर्वशी, पृ. 69

2.5. छायावादी काव्य और नारी

छायावाद को काल्पनिकता का युग माना जाता है। मगर इस युगीन स्त्री अंकन में भावना के साथ स्वतंत्र दृष्टि से देखने की शक्ति भी मौजूद थी। आदर्शात्मक रूप से छुटकारा पाने में इस प्रवृत्ति का विशेष योगदान है। प्रसाद का ऐतिहासिक काव्य कामायनी से लेकर पंत, निराला और महादेवी तक की कविताओं में स्त्री की अनन्य और अनुपम रूप महिमा का वर्णन है।

ऐतिहासिक दृष्टि से अबला और आदर्शवति नारी को श्रद्धा और इडा बनाने का श्रेय प्रसाद को दिया जाता है। पंत ने इसी नारी को प्रकृति, देवी, माँ और सहचारिणी बताया था। निराला का महत्व यह है कि दृष्टि से उनकी सभी सुंदरी और कल्याणमयी होने के साथ–साथ मज़दूरिन, विधवा और सामान्य औरत भी थी। नारी पूजा को व्यक्त करनेवाली काफ़ी पंक्तियाँ प्रसाद और पंत के काव्यों में हैं।

''तुम्हारी पावनता, अभिमान, शक्ति, पूजन, सम्मान;
अकेली सुन्दरता कल्याणिः
सकल ऐश्वर्यों की साधना।
स्वप्नमयि। है मायामयि!
तुम्हीं ही हो स्पृहा, आश्रु औ हास,
सृष्टि के उर की साँस।
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वेर्गिक आभास,
तुम्हारी सेवा में अनजान; हृदय है मेरा अंतर्धान,
देवी! माँ! सहचरि! प्राण![1]

---

1. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, नारी रूप, पृ. 112

छायावाद के समय की काल्पनिकता के साथ–साथ सामाजिक यथार्थ को भी कवियों ने प्रस्तुत किया है। जीवन की विवशता में स्त्री कभी–कभी वेश्या में तब्दील होती है। इस पर नरेन्द्र शर्मा लिखते हैं –

''इसे सर्पिणी समझ लिया है
तुमने पृथक विवर
भूखी, भली बडी निर्बल
उदर जानती है केवल।''[1]

शंका नहीं कि उस समय में भी वेश्या के जीवन का सही आकलन संभव नहीं था। पर सामाजिक समय की दृष्टि से उसपर सहानुभूतिपूर्व अंकन हुआ है, वह देखने लायक है।

महादेवी वर्मा ने स्त्री की पतित अवस्था को ज़्यादा उजागर किया है। उनकी कविताओं के मूल में वेदना भाव ही स्पष्ट होता है।

''मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हंसा।
नयनों में दीपक सा जलते
पलकों में निर्झरणी मचली।''[2]

परवर्ती समय में महादेवी के इस वेदना भाव का पुर्नवाचन किया गया। इसके मुताबिक महादेवी की स्त्री अपने समय की मारी है, जो प्रच्छन्न ढंग से ही कविता

---

1. नरेन्द्र शर्मा, प्रभात फेरी, वेश्या, पृ. 98
2. महादेवी वर्मा, यामा, पृ. 233

में बोल सकती थी। महादेवी का गद्य विशेषकर 'श्रृंखला की कडियाँ' इस बात का प्रमाण देता है कि वे मात्र वेदना की कवयित्री नहीं थी। यहाँ तक स्त्री चेतना की पहली पाश्चात्य पुस्तक सिमोन द बोआर की 'दि सेकेंट सेक्स' के पहले महादेवी वर्मा के स्त्री स्वावलंबी विचार सामने आए।

''वे स्त्री के साथ–समस्त पशु पक्षियों तथा उपेक्षितों–दलितों की मुक्ति–स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता की कामना करती थी।''[1] छायावादी कविता में स्त्री की विरहिणी और प्रेमिका रूप ज्वलंत रहा है। इसी युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की लिखी कविता में इस तरह स्त्री की प्रेमिका और विरहिणी रूप का चित्रण है।

छायावाद के सशक्त हस्ताक्षर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की लंबी कविता 'सरोजस्मृति' में उन्होंने पिता–पुरुष के रूप में अपनी असमर्थता व्यक्त की है। इस कविता का महत्व भी स्त्री लेखन में रेखांकित किया जा सकता है, क्योंकि इसमें स्त्री–पुरुष भेद बिना मनुष्य संवेदना का समान होने का अंकन है।

''धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित–काय
रखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ–समर।''[2]

---

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडियाँ, पृ. 19
2. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सरोजस्मृति, पृ. 19

छायावादी कल्पना और हालावादी मादकता में आदर्शवाद से स्त्री प्रकृति को छुटकारा मिला था। पर इनपर आरोप है कि छायावादी स्त्री यथार्थ से काफी दूर पर थी। इस संदर्भ में छायावादी नारी चित्रण को पुनर्वाचित करने का दायित्व परवर्ती पीढ़ी को है। प्रेयसी, प्रेमिका, प्रणयिनी, माया और कल्पना में छायावाद विचरण कर रहा था तो उनमें पत्नी, गृहणी, सेविका, नौकरानी तथा मज़दूरिन का रूप नगण्य सा रह गया। इस समस्या को धीरे धीरे ही मिटाने की प्रवृत्ति इस दौर के अंतिम समय तक नज़र आती है। निराला और पंत में यथार्थवादी प्रवृत्ति का प्रस्फुटन इसका परिपाक् था।

काल्पनिक एवं छायावादी कविताओं के प्रणेता होने पर भी सूर्यकांत त्रिपाठी निराला में उपलब्ध नारी दृष्टि विधवा, सरोजस्मृति में द्रष्टव्य है। आधुनिक हिंदी कविता की यथार्थवादी चर्चा में निराला का ऐतिहासिक स्थान आरंभिक बिंदू के रूप में लेना इस दृष्टि से उचित है। हालांकि इसके पहले भी नारी संबंधी कई कविताएँ उपलब्ध हैं, पर नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की झाँकी इनके जैसे प्रतिपादित करनेवाले दूसरे कवि तब कि नहीं हुए थे। निराला के बाद भी ऐसे अवसर पुरुष कविता में विरल ही दिखते हैं। काल्पनिकता के नामी कवि पंत ने युगवाणी तक आते–आते स्त्री पर अपनी वाणी बदल दी है।

यहाँ पर आकर कल्पना में विस्मृत प्रकृति कवि, स्त्री की दुस्थिति पर चिंतित है और खुद के पुरुषत्व पर शिकायत करते हैं। वे आह्वान करते हैं कि,

''मुक्त करो नारी को मानव
चिर बन्दिनी नारी को

युग–युग की बर्बर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को।''[1]

2.6. प्रगतिवादी दौर में स्त्री

यथार्थवादी दौर में ही सामाजिक मायने में समान दिखनेवाला स्त्री अंकन सामने आया, अतिवर्णन, अति सरलीकरण आया। प्रकाश तथा सौन्दर्य भर छोडकर स्त्रीत्व के विविध रूप इस दौर में साहित्य के अंग बन गए। 'विधवा' के साथ–निराला ने 'संध्यासुन्दरी' जैसी कविताएँ भी लिखीं। इस दौर में आकर विशेषता यह है कि स्त्री वर्णन काल्पनिकता को छोड देता है। नागार्जुन की कविताओं में सामान्य वर्ग की स्त्री छवि अपने कटू तिक्त यथार्थ के साथ सामने आती है।

सहानुभूति से बढ़कर नागार्जुन के पास पुंसत्व पर फटकार है, जो उन्हें जनकवि बनानेवाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। औरत की दुर्गति के लिए वे आदमी पर कोसता है। कवि नागार्जुन पुरुष जाति पर धिक्कार करते हैं।

''जा रे राक्षस, जा रे पुरुष जात
तेरी ही मारी मर रही हैं हम।''[2]

2.7. नई कविता और स्त्री

नई कविता के समय में कविता का नवीकरण हो रहा था। दो कवयित्रियों ने, पहले और चौथे सप्तकों में अपना–अपना योगदान दिया। इनके

---

1. सुमित्रानंदन पंत, युगवाणी, पृ. 64
2. नागार्जुन, पका है यह करहल, पृ. 18

काव्यों से यह स्पष्ट है कि इनमें स्त्री उपेक्षा की शिकायतें थीं। पर दोनों ने उसे स्पष्ट नहीं बताया।

''बरसते हैं मेघ झर झर
भीगती है धरा
उड़ती गंध
चाहता मन छोड दूँ निर्बाध
तन को, यहीं भीगो भीग जाए
देह का हर रंध्र रंध्रों में समाती स्निग्ध रस
की धार, प्राणों में अहर्निश जल ही ज्वाला बुझाए
भीग जाए भीगता रह जाय सब उत्ताप।''[1]

शकुंत माथुर की कविता 'दृष्टि भेद' में कवयित्री अपने अन्दर की घुटन को, पुरुषवादी दृष्टि को व्यक्त करती हुई नज़र आती है :–

''मैं फूल उस बाग का हूँ
जिसका मालिक फूलों को नहीं चाहता
उसकी आँख बंगले की सजावट पर रहती है
मैं चाँदनी नहीं हूँ
क्योंकि एकममक वैज्ञानिक के घर में हूँ
जिसकी आँख प्रकाश कोषों का
अनुसन्धान करने में लगी है

---

1. कीर्ति चौधरी, बरसते हैं मेघ झर–झर, पृ. 152

मैं मात्र रकम हूँ।

मात्र सजावट हूँ

मात्र खोज हूँ।[1]

सप्तकीय परंपरा के कवियों ने स्त्री विषयक कविताएँ लिखीं। इनमें शमशेर का नाम आगे हैं, जिन्होंने ऐन्द्रिक कविताएँ ज़्यादा लिखीं। शमशेर की प्रेम कविताओं को स्त्री विरोधी संवेदना माननेवाले लोग हैं। पर प्रेम जैसे सघन मनोविकार को इंसानी संवेदनात्मक दृष्टि से देखने पर यह व्यक्त होता है कि उनकी मानसिकता, मनुष्यत्व के पक्ष में बोलती है।

''फिर निगाहों ने तेरी दिल में कहीं चढकि भी

फिर मेरे दर्द ने पैमान वफ़ा बाँधा

और तो कुछ न किया इश्क में पकड़कर दिल ने

एक इन्सान से इन्सान वफ़ा का बाँधा!''[2]

देहमुक्ति के युग में शमशेर की ऐन्द्रिय संवेदना का कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं होता है। आगे की कवियों में भी स्त्री पक्ष की झांकियाँ मन के साथ तन को भी आलोडित करती हैं।

2.8. कविता में पुरूषत्व की महिमा की अभिव्यक्ति

यह बताना निराधार है कि आधुनिक हिंदी कविता के आरंभ में कसिवयों ने स्त्री विषय को सटीक एवं सदुद्देश्यपरक उठाया है। बीच–बीच में कवियों द्वारा पुरुष का अहं और अग्रता ग्रंथी भी जाने–अनजाने लिख रखा है।

1. शकुंत माथुर, दृष्टि भेद, पृ. 264
2. शमशेर बहादूर सिंह, सुखून की तलाश, पृ. 21

मुक्तिबोध की कविताओं में इस तरह की बातें ढूँढ निकाली जा सकती हैं।[1] 'पुरुष हूँ' शीर्षक कविता में कवि का आत्मकथ्य है कि पुरुष होने के नाते वे रो नहीं सकते। क्योंकि परंपरा के अनुसार रोना पुरुषत्व के लिए अपमानजनक है।

आगे के कवि धूमिल में भी 'मादा' के प्रति दूसरे दर्जे की भावना कई बार उभर आती है। धूमिल ने अपनी दुर्बल कविताओं को 'मादा कविताएँ' शीर्षक दिया है। इसमें शंका नहीं कि परंपरा एवं सामाजिक मान्यता में स्त्री दुर्बल प्रकृति की थी। इसका असर कवियों पर पडा था। संतोषजनक बात यह है कि परवर्ती समय में इन गलतियों को कवियों ने समझ लिया और स्त्री विरोध या पुरुष महिमा के शब्द कविताओं से दूर होते रहे।

2.9. समकालीन परिसर में कवि दृष्टि

समकालीन कवियों में अग्रणी व वयस्क, चन्द्रकांत देवताले तक पहुँचते–पहुँचते पुरुष के समान स्तर पर स्त्री को देखने व इंसान के रूप में उसको भी स्थान व सम्मान देने की प्रेरणा कविता में भरी हुई मिलती है।

एक दृष्टि से समकालीन समय, स्त्री पक्षीय समय भी है। यह चिंतनीय बात है कि इस समय में भी स्त्री विरोध, स्त्री हिंसा व शोषण प्रवृत्ति ज़ोरों पर है। पुराने ज़माने से बढ़कर कविगण इस पर चिंतित है, उन्हें पता है कि हर कोने में स्त्री हिंसा सूचित है, जिनपर कलम उठाने का दायित्व उन्हें संभालना है। इस दृष्टि से कवियों के साथ कवयित्रियों की संख्या भी बढ़ती है तो काव्य परिसर में स्त्रीपक्ष का माहौल सृजित होता है।

---

1. नेमीचन्द्र जैन, (सं.) मुक्तिबोध रचनावली, पृ. 287

भारतेंदु युग से समकालीन कविता तक में वर्णित–प्रतिपादित स्त्री विषयों को देखते हुए यह कहना उचित है कि सामाजिक–जागृति तथा राजनीतिक परिवर्तन के अनुसार स्त्रियों पर नज़रिया बदल रहा है। मगर यह बताना उचित नहीं है कि वांछित स्तर पर परिवर्तन हुआ है। कवियों ने जो बातें उठाई हैं, उनमें कई सत्री के पक्ष में काम करने योग्य हैं। मगर बीच में स्त्री पर कवि दृष्टि की सीमा भी व्यक्त हुई है।

इस बीच, माने पिछली एक सदी के समय की सबसे बडी सीमा कवयित्रियों की संख्या में देखनेवाली कमी ही है। चारदिवारियों में बंद स्त्रियाँ पिछली सदी के अंतिम दशकों में ही सामाजिक जगत् पर अपनी पहचान बनाने लगीं। सत्तर या अस्सी के दशकों से कवयित्रियों की संख्या बढ़ने लगी। आजकल कवयित्रियाँ, हर भारतीय भाषा में कविताएँ करती हैं, जो स्त्री पर ही नहीं, तमाम सांसारिक विषयों पर कविताएँ करती हैं। हिंदी में भी यह बात ठीक हैं।